फ्रेडरिक एंगेल्स (1881)

मज़दूरी व्यवस्था

द लेबर *स्टैण्डर्ड* अखबार के 21 मई, 1881 के अंक में प्रकाशित

पिछले एक लेख में हमने इस समयसिद्ध उक्ति पर विचार किया था, "काम के उचित दिन की उचित मज़दूरी", और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि वर्तमान सामाजिक अवस्थाओं में काम के दिन की सबसे उचित मज़दूरी अनिवार्य रूप से मज़दूर के उत्पाद के सबसे अनुचित बँटवारे के समान होती है, उस उत्पाद का बड़ा हिसा पूँजीपति की जेब में जाता है, और मज़दूर को उतने से ही गुज़ारा करना पड़ता है जितने से वह ख़ुद को काम करने लायक बनाये रख सके और अपनी नस्ल को बढ़ा सके।

यह राजनीतिक अर्थशास्त्र का एक नियम है, दूसरे शब्दों में, समाज के वर्तमान आर्थिक संगठन का एक नियम है, जो कि कोर्ट ऑफ चांसरी सहित इंग्लैण्ड के सभी सामान्य और वैधानिक क़ानूनों से अधिक शक्तिशाली है। जब तक समाज दो विरोधी वर्गों में बँटा हुआ है — जिसमें एक ओर हैं, उत्पादन के सभी साधनों, ज़मीन, कच्चे माल, मशीनरी पर एकाधिकार रखने वाले पूँजीपति; और दूसरी ओर हैं, उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से पूरी तरह वंचित मेहनतकश, जिनके पास अपनी काम करने की शक्ति के अलावा और कुछ भी नहीं होता; जब तक यह सामाजिक संगठन मौजूद है तब तक मज़दूरी का नियम सर्वशक्तिमान बना रहेगा, और हर दिन उन जंज़ीरों को और मज़बूत बनाता रहेगा जो मेहनतकश इंसान को ख़ुद अपनी पैदावार का ग़ुलाम बनाये रखती हैं — जिस पर पूँजीपति का एकाधिकार होता है।

इस देश की ट्रेड यूनियनों को इस क़ानून के ख़िलाफ़ लड़ते हुए अब करीब साठ साल हो गये हैं — और नतीजा क्या रहा? क्या वे मज़दूर वर्ग को उन बन्धनों से मुक्त कराने में सफल हुई हैं जिनमें पूँजी — ख़ुद उसके हाथों की पैदावार — ने उसे बाँधा रखा है? क्या उन्होंने मज़दूर वर्ग के एक भी तबके को उजरती ग़ुलामों की स्थिति से ऊपर उठने में, उत्पादन के साधनों का, कच्चे माल, औज़ारों, अपने उद्योग में आवश्यक मशीनरी का स्वामी, और इस तरह अपने श्रम की पैदावार का स्वामी बनने में सक्षम बनाया है? सब जानते हैं कि न केवल उन्होंने ऐसा नहीं किया है बल्कि उन्होंने कभी कोशिश ही नहीं की है।

लेकिन इस नाते हम यह नहीं कह सकते कि चूँकि ट्रेड यूनियनों ने ऐसा नहीं किया है इसलिए उनकी कोई उपयोगिता नहीं है। इसके विपरीत, इंग्लैण्ड में, और औद्योगिक उत्पादन करने वाले हर देश में, पूँजी के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के हर संघर्ष में ट्रेड यूनियनें उसके लिए ज़रूरी हैं। किसी भी

देश में मज़दूरी की औसत दर उस देश में आम जीवन स्तर के अनुसार मज़दूरों की नस्ल को जिन्दा रहने के लिए आवश्यक बुनियादी वस्तुओं के योग के बराबर होती है। यह जीवन स्तर अलग-अलग श्रेणियों के मज़दूरों के लिए अलग-अलग हो सकता है।

मज़दूरी की दर ऊँची बनाये रखने और काम के घण्टे कम करने के संघर्ष में ट्रेड यूनियनों का बहुत बड़ा लाभ यह है कि वे जीवन स्तर ऊँचा बनाये रखने और उसे बेहतर करने में मदद करती हैं। लन्दन के पूर्वी भाग में बहुत से पेशे ऐसे हैं जिनका श्रम राजगीर मिस्त्रियों तथा राजगीर के साथ काम करने वाले मज़दूरों से अधिक कुशल और उनके जैसा कठिन नहीं है, फिर भी वे इसके मुकाबले आधी मज़दूरी ही कमा पाते हैं। क्यों? सिर्फ़ इसलिए क्योंकि एक शक्तिशाली संगठन पहले वाले मज़दूरों को तुलनात्मक रूप से ऊँचा जीवन स्तर बनाये रखने में सक्षम बनाता है जिससे उनकी मज़दूरी निर्धारित होती है — जबकि दूसरे वाले मज़दूरों को असंगठित और कमज़ोर होने के नाते अपने नियोक्ताओं के अपरिहार्य और मनमाने अतिक्रमण का शिकार होना पड़ता है; उनका जीवन स्तर लगातार गिरता जाता है, वे लगातार कम से कम मज़दूरी पर जीना सीख लेते हैं, और उनकी मज़दूरी स्वाभाविक रूप से उस स्तर तक गिर जाती है जिसे उन्होंने खुद पर्याप्त मान लेना सीख लिया है।

यानी, मज़दूरी का नियम ऐसी रेखा नहीं खींचता जिसमें लचीलापन न हो। यह कुछ सीमाओं के साथ अटल नहीं है। हर समय (महामन्दी को छोड़कर) हर ट्रेड के लिए एक ख़ास दायरा होता है जिसके भीतर दोनों विरोधी पक्षों के संघर्ष के परिणामस्वरूप मज़दूरी की दर में संशोधन हो सकता है। हर मामले में मज़दूरी का निर्धारण सौदेबाज़ी से होता है और सौदेबाज़ी में जो सबसे देर तक और सबसे अच्छी तरह प्रतिरोध करता है उसीके पास अपने देय से अधिक पाने का सबसे अधिक मौक़ा रहता है। अगर कोई अकेला मज़दूर पूँजीपति के साथ सौदेबाज़ी की कोशिश करता है तो वह आसानी से मात खा जाता है और उसे अपनेआप समर्पण करना पड़ता है, लेकिन अगर किसी पेशे के सभी मज़दूर एक शक्तिशाली संगठन बना लेते हैं, अपने बीच से इतना कोष जमा कर लेते हैं जिससे वे ज़रूरत पड़ने पर अपने नियोक्ताओं के ख़िलाफ़ जा सकें, और इस प्रकार इन नियोक्ताओं से एक ताक़त के तौर पर मुक़ाबला करने में सक्षम हो जाते हैं, तभी, और सिर्फ़ तभी, उन्हें वह थोड़ी-सी रक़म मिल सकती है जिसे वर्तमान समाज के आर्थिक संगठन के अनुसार, काम के उचित दिन की उचित मज़दूरी कहा जा सकता है।

ट्रेड यूनियनों के संघर्ष से मज़दूरी का नियम पलट नहीं जाता। इसके विपरीत वे इसे लागू कराती हैं। ट्रेड यूनियनों के प्रतिरोध के बिना मज़दूर को वह भी नहीं मिलता जो मज़दूरी व्यवस्था के अनुसार उसे मिलना चाहिए। ट्रेड यूनियनों के डर से ही पूँजीपति को उसके मज़दूर की श्रम शक्ति का पूरा मूल्य देने के लिए मजबूर किया जा सकता है। आपको सबूत चाहिए? बड़ी ट्रेड यूनियनों

के सदस्यों को मिलने वाली मज़दूरी देखिये, और दुख-तकलीफ़ से भरे उस गड्ढे लन्दन के उस पूर्वी इलाक़े में असंख्य छोटे-छोटे पेशों के कामगारों को मिलने वाली मज़दूरी को देख लीजिए।

इस तरह ट्रेड यूनियनें मज़दूरी व्यवस्था पर हमला नहीं करतीं। लेकिन मज़दूरी कम या ज्यादा होने से मज़दूर वर्ग की आर्थिक अवनति नहीं होती। यह अवनति इस तथ्य में निहित होती है कि अपने श्रम की पूरी पैदावार प्राप्त करने के बजाय मज़दूर वर्ग को अपनी पैदावार के एक हिस्से से सन्तुष्ट होना पड़ता है जिसे मज़दूरी कहते हैं। पूँजीपति सारी पैदावार को हड़प लेता है (उसी में से वह मज़दूर का भुगतान करता है) क्योंकि श्रम के साधनों पर उसका मालिकाना होता है। और, इसलिए, जब तक मज़दूर वर्ग काम के सभी साधनों — ज़मीन, कच्चा माल, मशीनरी, आदि का — और इस प्रकार अपनी समस्त पैदावार का मालिक नहीं बन जाता तब तक वह वास्तव में मुक्त नहीं हो सकता।